*नीति और साक्ष्य**

रघुराम जी. राजन

सुप्रभात। मुझे भारतीय रिज़र्व बैंक में सांख्यिकी दिवस के आयोजन के अवसर पर विश्व से पधारे सांख्यिकीविद और अर्थशास्त्रियों का स्वागत करते हुए हर्ष हो रहा है। मुझे उम्मीद है कि आपका दिन इस चर्चा में गुज़र जाएगा कि अर्थशास्त्र और सांख्यिकी के क्षेत्र में क्या उन्नति हुई है। ये चर्चाएं बहुत ही उपयोगी होंगी। हम निश्चित रूप से अपनी सांख्यिकी की गुणवत्ता और सामयिकता को बेहतर बनाना चाहेंगे तथा बड़े आंकड़े अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होंगे।

लेकिन आज की सुबह मैं सांख्यिकी की गुणवत्ता और सामयिकता के बारे में बात नहीं करूंगा बल्कि नीतिगत संवादों में साक्ष्य के उपयोग के बारे में बात करना चाहूंगा। कुछ लोग यह मान सकते हैं कि किसी राजनीतिक निकाय को सहमत कराने के लिए आवश्यकता इस बात की होती है कि साक्ष्य के तौर पर एक नीति को दूसरी के ऊपर चुना जाए, पूरी तरह से सावधानीपूर्वक, और अच्छी तरह से निर्दिष्ट परीक्षण करके। साक्ष्य से सामना करते हुए गुमराह करने वाली नीतियों की वकालत करने वाले अन्य पक्ष के बढ़िया तर्क के सामने सिर झुका लेंगे तथा स्वयं को वहां से बाइज्जत हटा लेंगे। दुर्भाग्य से, जो नीति-निर्माताओं को सलाह देंगे, वे जानते हैं कि यह वैसा नहीं है जैसाकि वास्तविक दुनिया में होता है।

मैं यहां एक मुद्दे के बारे में बात करना चाहता हूं जिसके संबंध में भारत में मौजूदा समय में बहस की जा रही है। कुछ हलकों में यह माना जा रहा है कि रिज़र्व बैंक ने ब्याज दर तथा उधार की लागत अधिक रखकर आर्थिक विकास को नुकसान पहुंचाया है, उन ऊंची दरों ने ऋण तथा खर्च को कम कर दिया है लेकिन उनका मुद्रास्फीति पर बहुत कम असर हुआ है। मुद्रास्फीति इसलिए कम रही है क्योंकि किस्मत से ऊर्जा की कीमतें कम रही हैं। इसके अलावा, भारतीय रिज़र्व बैंक ने बैंकों के तुलनपत्र को स्वच्छ बनाने का आग्रह करके विकास के धीमेपन को और भी बढ़ा दिया है। भारतीय रिज़र्व बैंक, निश्चित रूप से अपनी नीतियों पर अडिग रहता है। जो भी हो, यह बहस बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह भारत में मध्यावधि में नीतिगत दिशा को आकार प्रदान कर सकती है।

अब इस बारे में साक्ष्य क्या कहते हैं? मैं केवल कुछ साधारण से चार्ट प्रस्तुत करना चाहता हूं, न कि विस्तृत एकॉनॉमेट्रिक्स परीक्षण, किंतु उन्हें हमारे द्वारा की गई कार्रवाई का औचित्य प्रदर्शित करना चाहिए। खासतौर से मौद्रिक नीति बहुत अधिक कठोर नहीं थी। बल्कि, मैं यह कहना चाहूंगा कि ऋण की वृद्धि में धीमापन काफी हद तक सरकारी क्षेत्र के बैंकों में दबाव से हुआ है, जो गत समय में उधार देने में हुई गलतियों से उत्पन्न हुआ है। इसका निवारण मात्र नीतिगत दरों में कटौती करके नहीं किया जा सकता। बल्कि, इसके लिए ज़रूरी है कि सरकारी क्षेत्र के बैंकों के तुलनपत्र को स्वच्छ बनाया जाए, जो किया जारहा है, और आवश्यकता है कि उसे उसके औचित्य के अनुसार अंजाम तक पहुंचाया जाए। उसके बाद मैं यह अंदाज़ा लगाउंगा कि सार्वजनिक बहस में आर्थिक साक्ष्यों को माना जाना इतना मुश्किल क्यों होता है, न केवल भारत में बल्कि अन्यत्र पूरे विश्व में।

सरकारी क्षेत्र द्वारा उधार बनाम निजी क्षेत्र द्वारा उधार

हम बात शुरू करते हैं सरकारी क्षेत्र के ऋण वृद्धि की तुलना नये निजी क्षेत्र के बैंकों की ऋण वृद्धि से। जैसाकि गैर-खाद्येतर ऋण में वृद्धि (चार्ट 1) की प्रवृत्ति से स्पष्ट है कि 2014 के प्रारंभ से ही सरकारी क्षेत्र के बैंकों के गैर-खाद्येतर ऋण नये निजी क्षेत्र के बैंकों (एक्सिस, एचडीएफसी, आइसीआईसीआई और इंडसइंड) के ऋण वृद्धि की तुलना में घट रहे हैं।

यह स्थिति न केवल उद्योग (चार्ट 2) को दिए गए ऋण में दिखाई देती है बल्कि सूक्ष्म और लघु उद्यमों को दिए गए ऋण में भी (चार्ट 3)[1]।

चार्ट 1: खाद्येतर ऋण वृद्धि
(वर्ष-दर-वर्ष)

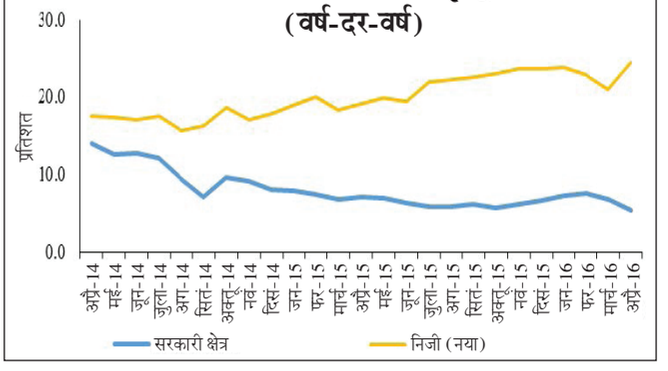

* डॉ. रघुराम राजन, गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा 26 जुलाई, 2016 को 10वें सांख्यिकीय दिवस के अवसर पर, भारतीय रिज़र्व बैंक में दिया गया उद्घाटन भाषण।

[1] चार्ट 2 में नवीन ऋणात्मक वृद्धि अप्रैल संख्या असामान्य हो सकती है क्योंकि उदय बांड को बैंक ऋण बही से निवेश में अंतरित किया जा रहा है।

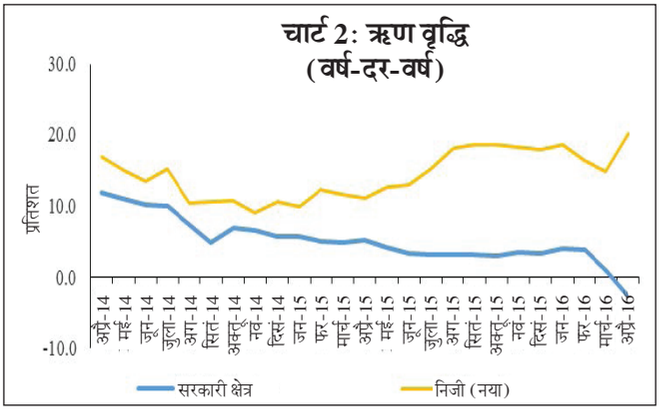

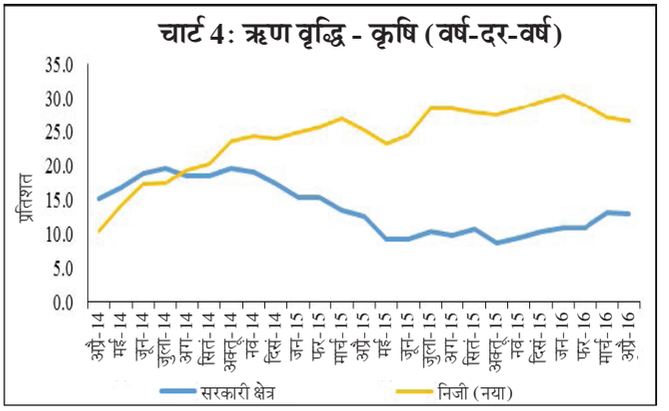

ऋण की वृद्धि में इस प्रकार की तुलानात्मक कमी, यद्यपि इतना अधिक नाटकीय नहीं है, किंतु कृषि क्षेत्र में भी पाई गई है (चार्ट 4), हालांकि सरकारी क्षेत्र के बेंकों में ऋण में वृद्धि दुबारा गति पकड़ रही है।

जब कोई यह देखता है कि उधार देने की दर धीमी हो गई है तो वह यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि ऋण की मांग नहीं है - फर्में निवेश नहीं कर रही हैं। लेकिन यहां हम सरकारी क्षेत्र के बैंकों द्वारा दिए जाने वाले उधार में मंदी की तुलना में निजी क्षेत्र के बैंकों द्वारा दिए जा रहे उधार की स्थिति देख रहे हैं। ऐसा क्यों है?

इस प्रकार के साधारण परीक्षण से पता चलता है कि समस्या यह नहीं है कि ऋण केलिए सकल मांग कम है क्योंकि ब्याज दरें बहुत अधिक हैं। इसका आशय यह हो सकता है कि समस्त स्तर पर ऋण की स्थिति मंद चल रही है। फिर भी निजी क्षेत्र के बैंकों से लेकर विभिन्न क्षेत्रों में ऋण की वृद्धि की वास्तविक दरें बहुत अधिक हैं, और निजी क्षेत्र के बैंक, सरकारी क्षेत्र के बैंकों की तरह कम ब्याज दर तो प्रभारित नहीं करते हैं। इसीलिए उनके यहां मौजूदा ब्याज दर पर ऋण की मांग बहुत ज्यादा है। अतः कोई भी इसका प्रत्यक्ष कारण यही अंदाज़ा लगा सकता है कि ऋण में धीमापन इसलिए है क्योंकि कोई चीज ऐसी है जो सरकारी क्षेत्र के बैंकों की ऋण आपूर्ति को प्रभावित कर रही है।

क्या यह सरकारी क्षेत्र के बैंकों में पूंजी की कमी के कारण हो सकता है? यदि हम वैयक्तिक ऋण (चार्ट 5) की वृद्धि पर नज़र डालें और खासतौर से आवास ऋण पर (चार्ट 6) तो सरकारी क्षेत्र के बैंकों की ऋण वृद्धि निजी क्षेत्र के बैंकों की ऋण वृद्धि के समान पहुंचती दिखाई देती है।

इसलिए पूंजी के अभाव को प्राथमिक दोष नहीं माना जा सकता है। बल्कि सभी स्तरों पर सरकारी क्षेत्र के उधार में कमी हुई है, ऐसा प्रतीत होता है कि पिछले समय में उच्च एक्सपोजर के कुछेक क्षेत्र में कमी आई है, खासतौर से उद्योग को एवं लघय उद्यमों को दिए गए ऋणों में।

इसके अतिरिक्त, तथ्य यह है कि ऋण में धीमापन 2014 की शुरुआत में ही आ गया था जिसके लिए बैंकों की सफाई की जानी थी, जो राजकोषीय वर्ष 2015 की दूसरी छमाही में प्रारंभ कर दिया गया था, ये ऋण के धीमेपन का कारण नहीं था। वस्तुतः यह मंदी सरकारी क्षेत्र के बैंकों के तुलनपत्र के अत्यधिक बोझ से दब जाने एवं सरकारी

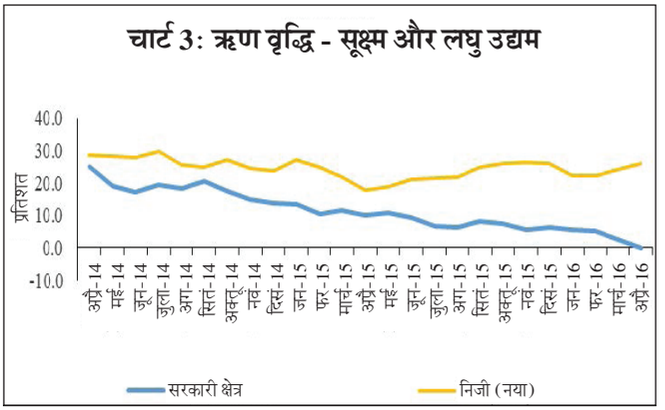

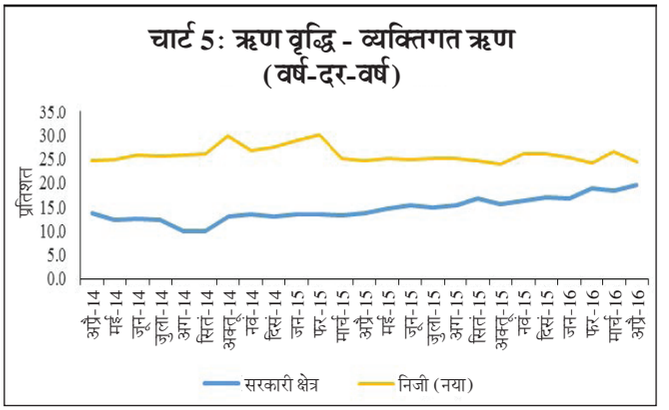

चार्ट 6: ऋण वृद्धि - आवास (वर्ष-दर-वर्ष)

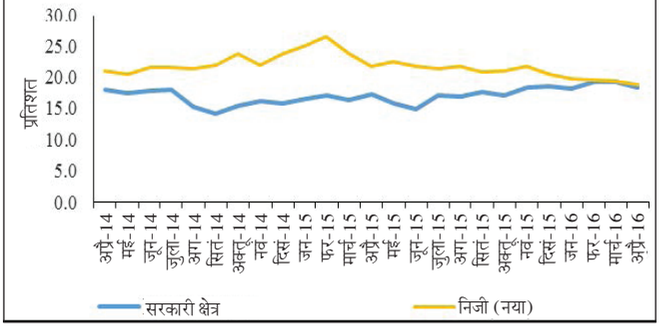

क्षेत्र के बैंकों द्वारा जोखिम न उठाने के कारण थी। उनकी गतिविधियों न बढ़ पाने की वजह निजी क्षेत्र के बैंकों की तुलना में उनकी तेजी से कम होती जमाराशियों से दिखाई देती है (चार्ट 7)। सबसे अहम बात यह है कि यदि सरकारी क्षेत्र के बैंक उधार देना नहीं चाहते तो वे क्यों अपनी जमाराशियों को आक्रामक रूप से बढ़ाना चाहेंगे?

संक्षेप में, भारतीय साक्ष्य, जिसके खुलासे को विश्व के अन्य भागों जैसे यूरोप और जापान जैसे देशों के अनुभवों से समर्थन मिलता है, से पता चलता है कि हम जो देख रहे हैं वह बैंकिंग प्रणाली का तुलनपत्र की समस्या को लेकर बहुत पुराना रवैया है। हम इसके प्रभावों को पहचानने में सफल हैं क्योंकि हमारी बैंकिंग प्रणाली के कुछ हिस्से को इस समस्या से नुकसान नहीं पहुंचता है। जाहिर है कि कोई भी इसका उपचार खुले दिमाग से इसकी मूल समस्या को समाप्त करना चाहेगा - अर्थात् सरकारी क्षेत्र के बैंकों के तुलन पत्र को स्वच्छ बनाना, ऐसा उपचार जिसने अन्य देशों में जहां इसे कार्यान्वित किया गया है, अच्छी तरह कार्य किया है। सफाई करना समाधान का एक हिस्सा है, न कि समस्या, इसलिए हम वही कर रहे हैं।

चार्ट 7: बैंकवार जमाराशि वृद्धि
(वर्ष-दर-वर्ष, प्रतिशत)

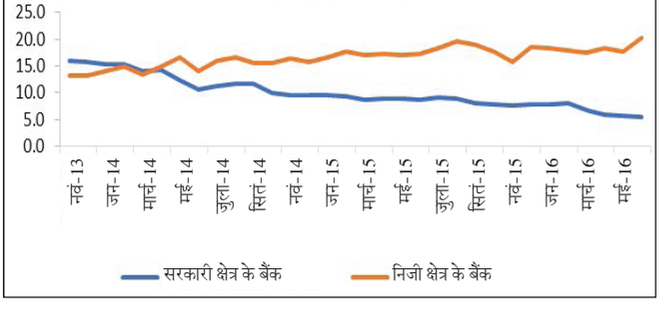

अन्य आरोप कि क्या दरें बहुत ऊंची हैं

अब मैं मुद्रसास्फीति के बारे में बात करूंगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि भारतीय रिज़र्व बैंक ने मुद्रास्फीति के विरुद्ध लड़ाई लड़ने पर ज़ोर दिया है, और किसी भी अपस्फीतिकारी प्रक्रिया का प्रमुख तत्व सकल मांग को कम करना है। वहीं पर, पिछले समय में किए गए अधिनिवेश तथा विश्व में कम मांग ने कुछ क्षेत्रों में अतिक्षमता की स्थिति पैदा कर दी। भारतीय रिज़र्व बैंक विभिन्न परिस्थितियों में मांग में कम कटौती किए जाने में कम आक्रामक बना रह सका है। यही कारण है कि हमने मुद्रास्फीति को कम करने केलिए ग्लाइड-पथ का चयन किया है, 2015 में पहले मुद्रास्फीति को 8 प्रतिशत तक लाना, उसके बाद 2016 में 6 प्रतिशत तक ले जाना और अब 2017 में 5 प्रतिशत करना। हमाने जनवरी 2015 से ब्याज दर में 150 आधार अंक तक कटौती की है। वर्तमान में सीपीआई मुद्रास्फीति हमारी मुद्रास्फीति के लक्ष्य की ऊपरी सीमा के आसपास थी, ऐसी स्थिति में बहुत कम ऐसे होंगे जो यह तर्क दे सकेंगे कि हम पर्याप्त रूप से निभावकारी नहीं थे। यह सही है कि हमारे पिछले मौद्रिक नीति वक्तव्य में यह उल्लेख किया गया था कि हम मार्च 2017 तक उसे लगभग 5 प्रतिशत तक लाने की उम्मीद रखते हैं।

आलोचक मुद्रास्फीति के बारे में दो विरोधाभासी तर्क देते हैं। एक ओर यह कि हमने उच्च दर के माध्यम से मांग और वृद्धि को मार दिया है- हालांकि प्राप्त अनुभवों के आधार पर यह कहना स्वयं में बड़ा अजीब लगता है क्योंकि सच यह है कि हम विश्व की सबसे तेज बढ़ने वाली अर्थव्यवस्था हैं। दूसरी ओर, वे यह तर्क देते हैं कि हमारी नीतियों का मुद्रास्फीति को कम करने पर बहुत कम प्रभाव पड़ा है, अर्थात् अपस्फीति की स्थिति तेल की कीमतों तथा अन्य वस्तुओं की कीमतों में कमी की वजह से है।

यह उल्लेख करना बेहतर होगा कि अपस्फीतिकारी प्रक्रिया 2013 के आखिर में प्रारंभ हो चुकी थी, जो तेल की कीमतों में गिरावट आने से काफी पहले से शुरू हो चुकी थी। इतना ही नहीं, विश्व में तेल की कीमतों में हुई गिरावट का ज्यादातर हिस्सा घरेलू स्तर पर नहीं दिया गया, क्योंकि सरकार ने पेट्रोल और डीज़ल पर उत्पादन शुल्क बढ़ा दिया था, तथा रिफाइनरी के मार्जिन का भी सफाया कर दिया गया था। उदाहरण के लिए, यहां तक कि अगस्त 2014 से जनवरी 2016 के बीच भारतीय कच्चे तेल के बास्केट की कीमत 72 प्रतिशत तक गिर गई थी, किंतु पेट्रोल पंप पर पेट्रोल की कीमतें केवल 17 प्रतिशत

चार्ट 8: मुद्रास्फीति - विशिष्ट श्रेणी

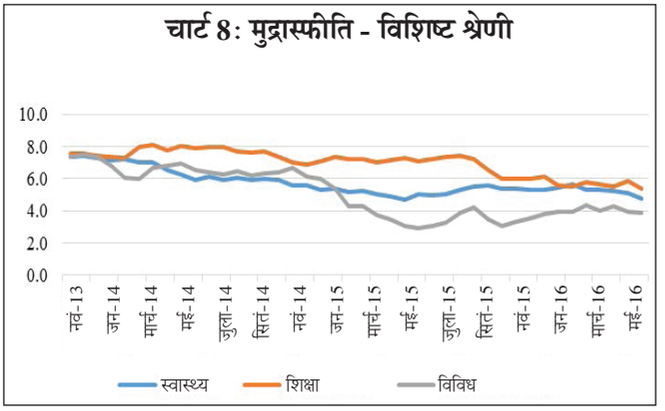

ही घटी थीं। अतः, जहां मैं स्वयं इस बात को स्वीकार करता हूं कि विश्व में अंतरराष्ट्रीय कीमतों में नरमी ने मुद्रास्फीति को कम करने में मदद की है, किंतु पूरी कहानी इतनी ही नहीं है। इसे देखने के लिए चार्ट 8 में हम गैर-व्यापारित शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं को तथा सीपीआई इंडेक्स के बृहत विविध घटकों को अंकित करते हैं। यहां भी मुद्रास्फीति घट गई है।

रिज़र्व बैंक मांग को मारे बिना किस प्रकार से मुद्रास्फीति को कम कर सका? मुद्रास्फीति को लोगों की उम्मीदों तक लाकर और लोगों के कोलाहल पर ध्यान न देते हुए ब्याज दर कम न करना, रोचक है यह, शोर तब मचता है जब वर्ष-दर-वर्ष मुद्रास्फीति नीतिगत दर से अपेक्षाकृत कम हो जाती है, इस बात से कोई सरोकार नहीं है कि वर्ष-दर-वर्ष कम मुद्रास्फीति की दर मेकैनिकल आधार प्रभाव के कारण है और इस बात की भी परवाह नहीं है कि भविष्य में मुद्रास्फीति के बढ़ने का अनुमान है। कोई भी संभीर प्रकृति का केंद्रीय बैंक इस प्रकार के आधार पर नीतिगत दर का निर्धारण नहीं करता है, लेकिन यह कभी-कभी यहां मीडिया में बहस का मुद्दा बन जाता है।

इस बात के अंतिम साक्ष्य के रूप में कि क्या हमारी नीति बहुत कठोर है, चार्ट 9 में विश्व भर की वास्तविक नीतिगत दरों को अंकित

चार्ट 9: वास्तविक नीति ब्याजदर (%)

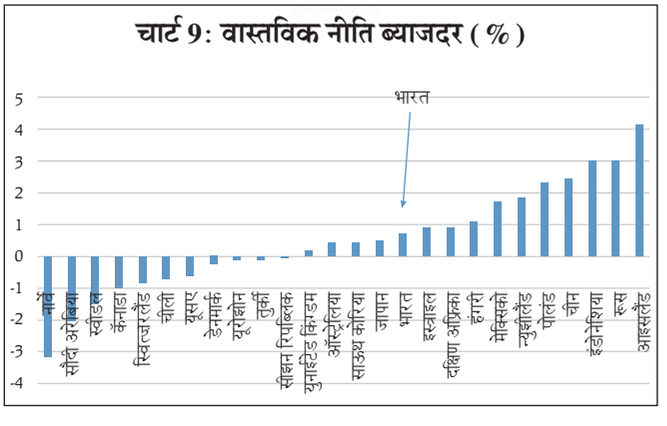

किया गया है। हमारी वास्तवक वृद्धि दर विश्व में सबसे अधिक है, जबकि मुद्रस्फीति ऊपरी टियर में है, इसलिए कोई यह सोच सकता है कि हमारी वास्तविक वृद्धि दर ऊंची होनी चाहिए। बल्कि बड़े राष्ट्रों के झुंड के बीच यह उचित होगा, और चीन से काफी कम होगा, जिससे हम प्रायः स्वयं की तुलना करते हैं। एक बार पुनः ये साक्ष्य हमारी नीति के आलोचकों के विचार से विरोधाभासी हो सकते हैं।

अंत में, कुछ उचित चिंताएं इस बात को लेकर उठाई गई हैं कि क्या हमारी मुद्रास्फीति को उसके अस्थिर कंपोनेंट को लक्ष्य करना चाहिए जैसे सब्जियां और खाद्य-सामग्री। वास्तविक जीवन में, भारतीय रिज़र्व बैंक ने नीति के निर्धारण में इस प्रकार की अस्थिरता को ध्यान में रखा है। यहां तक कि नई मुद्रास्फीति संरचना में लगातार तीन तिमाहियों तक मुद्रास्फीति के लक्ष्य का उल्लंघन किया जाएगा और इस असफलता का स्पष्टीकरण एमपीसी को देना पड़ेगा। अस्थिर कंपोनेंट जैसे सब्जी कि कीमतें तीन तिमाहियों में सहज हो जाएंगी। वहीं पर, यह उचित नहीं होगा कि लक्ष्य-इंडेक्स से खाद्य को पूरी तरह छोड़ दिया जाए। अभी भी अधिकांश भारतीयों के लिए यह अकेली सबसे महत्वपूर्ण उपभोक्ता श्रेणी है। इसके अलावा, जैसे-जैसे भारतीय व्यक्ति अमीर होता जाता है उसके खाने-पीने का पैटर्न बी बदलता जाता है और वह मनचाही चीजों के लिए अधिक पैसा देता है। इस प्रकार के संरचनागत बदलाव को और उसके साथ जुड़ी आपूर्ति की आवश्यकता को नज़रअंदाज़ करना उपयुक्त नहीं होगा। यह खुशी की बात है कि वर्षों की दाल की ऊंची महंगाई के बाद हम यह देख रहे हैं कि सरकार यह इस बात का ज़ोरदार प्रयास कर रही है कि दाल की बुवाई को प्रोत्साहित किया जाए। और प्रारंभिक बुवाई पैटर्न से पता चलता है कि दाल के उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि की संभावना है।

प्रतिकूल साक्ष्य होने के बावजूद बहस क्यों बनी हुई है?

डाटा होने के बावजूद इस बहस पर प्रभाव क्यों नहीं पड़ रहा है? ऐसा क्यों है कि जब हम मुद्रास्फीति को नियंत्रण में ला रहे हैं तब लोगों की आवाज़ झगड़ा बंद करने केलिए तेज़ हो रही है? मुझे सही-सही पता नहीं है लेकिन मैं एक खतरे का अनुमान लगा सकता हूं; क्या यह संभव है कि मुद्रास्फीति की राजनैतिक अर्थव्यवस्था हमारी उस सीख से भिन्न है जो हमने एक विद्यार्थी के रूप में कक्षा में पढ़ी है? और क्या बैंक को स्वच्छ बनाने की राजनैतिक अर्थव्यवस्था का अभी तक कोई समानांतर उपाय पैदा हुआ है?

विशिष्टतः, मुद्रास्फीति के विरुद्ध सार्वजनिक कमेंट्री और समाज के कमज़ोर वर्गों पर उसके घातक प्रभाव के बावजूद तब तक

मुद्रास्फीति के बारे में सार्वजनिक कमेंट्री के प्रति आश्चर्यजनक तरीके से बहुत कम जिज्ञासा प्रतीत होती है जब तक मुद्रास्फीति एक अंक में बनी हुई है। उद्योगपति ऋणात्मक वास्तविक ब्याज दर का स्वागत प्रत्यक्ष कारणों से करते हैं। अनेक मध्य वर्ग के बचतकर्ता उनकी मीयादी जमाराशि पर उच्च सांकेतिक ब्याज दरों को महत्व देते हैं, और उनको यह एकसास नहीं होता कि उनकी मूल राशि प्रत्येक वर्ष काफी घटती जाती है। केनेसियन अर्थशास्त्री इसलिए खुश हैं कि मौद्रिक नीति अत्यधिक निभावकारी है। विश्लेषक ब्याज दर की प्रत्येक कटौती पर खुश होते हैं क्योंकि उनके लिए बाजार को पवलोवियन सकारात्मक रेस्पांस मिलता है। यहां तक कि गरीब अपनी आय को समाप्त होता देख सहन कर लेता है, और केवल तब शिकायत करता है जब कुछ प्रमुख भोजन की कीमतें आसमान छूने लगती हैं। दिलचस्प बात यह है कि प्रमुख खाद्य पदार्थों की कीमतों में अल्पकाल में वृद्धि को वस्तुतः मौद्रिक नीति द्वारा नियंत्रण नहीं किया जाता है, और तब यह मान लेना सही नहीं होता है कि चूंकि मौद्रिक नीति मुद्रास्फीति के महत्वपूर्ण हिस्से को राजनैतिक रूप से नियंत्रित नहीं कर सकती, इसलिए मुद्रास्फीति को आमतौर पर नियंत्रित नहीं कर सकती है।

जब तक मुद्रास्फीति केवल थोड़ी सी ऊंची रहती है तब तक कोई भी राजनैतिक पार्टी ज़ोरदार तरीके से आवाज़ नहीं उठाती है, जबकि अपस्फीतिकारी नीतियों का विरोध करने वाले अपनी च्छा से किसी भी प्रकार की बहस का मुद्दा खड़ा कर सकते हैं। इसका एक ठोस तरीका यह है कि ब्याज दर विकास को नुकसान पहुंचा रही है। इस तरक का खंडन करना मुश्किल है क्योंकि कुछ ऐसे सहानुभूतिपूर्ण उधारकर्ता हमेशा होते हैं जो यथोचित रूप से अत्यधिक दर का भुगतान करते रहते हैं। छोटे उधारकर्ताओं की उच्च वर्तमान उधार दर - मान लीजिए आज 15 प्रतिशत है - जिसे प्रदर्श ए के रूप में केंद्रीय बैंक की नीतियों से अलग रखा गया है, भले ही प्रभारित दरों में शामिल हैं 6.5 प्रतिशत नीतिगत दर, 8.5 प्रतिशत अतिरिक्त स्प्रेड, जिसमें शामिल है चूक जोखिम प्रीमियम, अवधि प्रीमियम, मुद्रास्फीति जोखिम प्रीमियम और कमर्शियल बैंक की क्षतिपूर्ति लागत, इनमें से कोई भी सीधे तौर पर नीतिगत दर से प्रभावित नहीं होती है।

प्रेस निरंतर मुद्रास्फीति बनाम विकास पर बहस करते रहे हैं, और मुद्रास्फीति जो अभी भी धीमी बनी हुई है, केवल बहुत ही दकियानूस केंद्रीय बैंक ही विकास प्रक्रिया के विरुद्ध हो सकता है! जो भी हो, आज की ज़रूरत से ज्यादा निभावकारी नीति कल की मुद्रास्फीति का निर्धारण करेगी, पिछले चालीस वर्ष के आर्थिक सिद्धांत और प्रथाओं से ज्ञात होता है कि मध्यावधि में विकास को समर्थन देने केलिए केंद्रीय बैंक के पास सबसे अच्छा रास्ता मुद्रास्फीति को कम एवं स्थिर बनाए रखना है।

सच्चाई यह है कि उच्च मुद्रास्फीति स्थिर नहीं है। जैसाकि हमने भारत के विगत दिनों में तथा अन्य उभरते राष्ट्रों में देखा है। थोड़ा हलकी सी मुद्रास्फीति तेजी से उच्च मुद्रास्फीति में बदल जाती है। उस समय करेंसी अस्थिर बन जाती है, जो प्रायः बाहरी दबाव का कारण बनती है। इन सबके बावजूद 2013 की गर्मियों में हमें हमें पांच कमज़ोर कहा गया था, जिसका कारण उच्च मुद्रास्फीति थी। इतना ही नहीं, बचतकर्ता अंततः यह समझता है कि महंगाई अधिक होने से उसकी वित्तीय बचत का मूल्य घटने लगता है और वह अपान पैसा स्थावर संपाद जैसे स्वर्ण में लगाने लगता है। चूंकि हमारे देश में सोने की खानें नहीं हैं इसलिए इससे भी चालू खाते पर दबाव पड़ता है।

संक्षेप में कहें तो अधिक महंगाई से जुड़ी दुर्बलता इकट्ठी होने लगती है और अंततः संकट का रूप ले लेती है। लेकिन यह विश्वास बना हुआ है कि भारत में मुद्रास्फीति के विरुद्ध एक मज़बूत घरेलू जनमत है, जिसे विद्यार्थी जीवन से ही हमारे दिमाग में कूट-कूट कर भर दिया जाता है, हो सकता है कि यह मिथक हो, लेकिन निश्चित रूप से थोड़ी सी ऊंची महंगाई के स्तर का विरोध होता है। जब महंगाई बढ़ती है, उस समय उसे नीचे ले जाने के किसी भी प्रकार के राजनैतिक दबाव के बिना किस प्रकार से मैक्रो-आर्थिक स्थिरता को बनाए रखा जा सकता है?

अनेक अधिक मज़बूत एशियाई अर्थव्यव्थाएं जो विकास के दौर में महंगाई की मार से निपटने के लिए सख्त प्रशासनिक उपाय अपनाते हैं, हमारे लोकतांत्रिक ढांचे में इस प्राकर के उपाय की अनुमति नहीं है। इस लिए बेहतर है कि महंगाई से लड़ने केलिए हम पहले से ही कोई संस्था बनाएं। शायद यही कारण है कि सभी सरकारों ने पूरे विवेक से भारतीय रिज़र्व बैंक को इसके लिए उपाय करने की स्वतंत्रता प्रदान की है। निश्चित रूप से, इस प्रकार की चिंताएं मौजूदा सरकार की औपचारिक मुद्रास्फीति लक्ष्य के माध्यम से महंगाई कम रखते हुए उसे नियंत्रित करने की बचनबद्धता तथा मौद्रिक नीति समिति गठित करने के निर्णय को समर्थन प्रदान करती है।

मज़े की बात यह है कि इसी प्रकार की एक अन्य सक्रियता सरकारी क्षेत्र के बैंकों को साफ-सुथरा बनाने की पनप रही है। स्पष्ट है कि ज़रूरत से ज्यादा लीवरेज्ड प्रवर्तक यह नहीं चाहेगा कि बैंक स्क्रू टाइट करे और पैसा वापस लेने की मांग करे। कुछ सरकारी क्षेत्र के बैंक के सीईओ जिनके कार्यकाल कम हैं वे बहुत सख्त एवं एनपीए को पहचानने के बारे में कार्रवाई लेने के पक्ष में नहीं हेंगे। हो सकता है कि वे

ऐसी किसी भी प्रकार की समस्या को अपने उत्तराधिकारी को अंतरित करना चाहें।

बैंकों के शेयरों में निवेश करने वाले लोग, प्रारंभिक अवस्था में नहीं चाहेंगे कि ऋण में होने वाले नुकसान को उजागर किया जाए। और जमाकर्ता यह अच्छी तरह जानते हैं कि सरकार का पूरा समर्थन सरकारी क्षेत्र के बैंकों को है, इसलिए बैंक के तुलनपत्र की गुणवत्ता के प्रति उन्हें कोई बेचैनी नहीं है।

इसलिए ऋण से होने वाले नुकासन की समस्या को नज़रअंदाज़ कर देना आसान है कि किसी न किसी तरह से समाप्त हो जाएगा, ठीक उसी तरह से जैसे थोड़ी सी उच्च महंगाई को अनदेखा किया जा सकता है। लेकिन, जैसाकि महंगाई के साथ है उसी प्रकार ऋण के नुकसान की प्रवृत्ति बढ़ते रहने की है। अन्य देशों से यह सबक हासिल होता है कि नुकसान बड़ा होने का इंतजार करने तक नज़रअंदाज़ करने से वे इतने अधिक हो जाते हैं कि बाद में उसे नियंत्रित कर पाना मुश्किल हो जाता है और पूरी प्रणाली में संकट पैदा हो जाता है। जैसाकि महंगाई के साथ किया जाता है उसी प्रकार केंद्रीय बैंक का यह कार्य है कि वह बैंक पर दबाव डाले कि वह स्वयं को शीघ्र स्वच्छ बनाए, जबकि कुछ ही लोग हैं जो केंद्रीय बैंक की इस सक्रियता को समर्थन प्रदान करते हैं।

किस्मत से, प्रारंभ में तोड़ा अनिच्छा दिखाते हुए बैंकों न स्वच्छ बनाने के प्रति भावना प्रदर्शित की और कुछ बैंक तो उससे आगे निकल गए और वह कार्य कर दिया जो उनसे अपेक्षित था। स्टाक बाज़ार ने इस वर्ष के प्रारंभ में नकारात्मक रूप से प्रतिक्रिया व्यक्त की थी, वह सरकारी क्षेत्र के बैंकों के स्टाक मूल्यों के प्रति अधिक समर्थनकारी रहा है, जिससे यह पता चलता है कि शायद इस तरह की स्वच्छता मध्यावधि के लिए अच्छी है। प्रवर्तक अपनी आस्तियों को बेचकर पैसे अदा कर रहे हैं, और नई आस्ति पुनर्रचना कंपनियों ने आस्तियां खरीदान शुरू कर दिया है। बैंक के तुलनपत्र के स्वास्थ्य को वापस लाने केलिए यह ज़रूरी है कि यह प्रक्रिया उसके मकसद के अनुसार पूरी की जानी चाहिए।

बिना सुबूत के केंद्रीय बैंक की आलोचना करना सिर्फ भारत में ही नहीं है। बैंक आफ इंग्लैंड की आलोचना ब्रेक्सिट की आर्थिक लागत आने केलिए की गई। ईसीबी की आसपास की अर्थव्यवस्था के वित्तीय क्षेत्र के बिगड़े हुए स्वास्थ्य को बहाल करने के लिए की गई कोशिश की आलोचना की गई और फेड को टेलर नियम से हटने केलिए तीखी आलोचना सहनी पड़ रही है। आलोचनाएं देश से ही आती हैं, इसलिए केंद्रीय बैंक को उन्हें अपनी नीतियां बनाते समय ध्यान में रखना चाहिए। वहीं पर, पूरे विश्व की सरकारों को चाहिए कि वे कई बार जिस बात की सूचना नहीं है तथा आलोचना केलिए जिन लोगों को उकसाया गया है, उससे ऊपर उठकर देखें और केंद्रीय बैंक द्वारा की जाने वाली कार्रवाई की स्वतंत्रता की रक्षा करें। ऐसा करना स्थिर एवं संवहनीय विकास के लिए अनिवार्य है।